धर्मनिरपेक्षता–पुनर्विचार

अनुपमा यादव

आज भारत के संविधान ने 56 वर्षों के सीमित कालखंड में एक लंबी यात्रा तय कर ली है। एक समय था जब संविधान गगन चुंबी हिमालय के शिखर पर अवस्थित-सा लगता था, लेकिन अब वह कोलहलमय जनता के चौराहे पर आ खड़ा हुआ है। राष्ट्र के प्रति समर्पित महान एवं विद्वान नेताओं ने भारत को एक सूत्र में बांधने तथा विविधता में एकता बनाए रखने का लक्ष्य निर्धारित कर देश में समता, न्याय और धर्मनिरपेक्षता पर आधारित समृद्धशाली राष्ट्र के निर्माण की कल्पना की थी, किंतु विडंबना यह है कि धर्मनिरपेक्षता पर आज तीव्र बहस होने लगी है। पिछले 56 वर्षों के दौरान हमारे आदर्श एवं सिद्धांत बिखरने लगे हैं। संप्रदायवाद, धार्मिक असहिष्णुता, धर्मांधता, धार्मिक कट्टरतावाद का दानव सिर उठाने लगा है। आज धर्म को राजनीति से अलग रखने के हमारे बुनियादी सिद्धांत पर प्रहार किया जा रहा है।

आजादी के बाद भारत में स्वयं अपनी अनिवार्यताओं, एक राष्ट्र के रूप में अपनी खास विशेषताओं से धर्मनिरपेक्षता का उदय हुआ है। बहुधर्मी, बहुभाषी भारत के लिए इसे बेहतर

व्यवस्था समझा गया। 3 मई 1948 को संविधान सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने की दृष्टि से किसी भी ऐसे संगठन पर राजनैतिक क्षेत्र में काम करने पर प्रतिबंध लगाने की अनुशंसा की गई थी जिसका गठन धर्म या संप्रदायवाद के आधार पर हुआ हो, इसी दृष्टि से भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषत किया गया। धर्मनिरपेक्षता "सेक्यूलरिज्म" का हिंदी रूपांतर है इसका अभिप्राय राज्य को धर्म के निर्देशन, अंकुश प्रभाव से मुक्त रखने से है। धर्मनिरपेक्षता राज्य के शासनतंत्र से संबंधित है, न कि किसी व्यक्ति से। "सेक्यूलरिज्म" एक व्यवस्था है, राजनीति के अतिरिक्त समाज, संस्कृति और शिक्षा से भी यह संबंधित है।

धर्मनिरपेक्षता शब्द एक दीर्घकालीन, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न एवं प्रचलित हुआ। इसके लिए मध्यकालीन यूरोप की उस स्थिति पर दृष्टिपात आवश्यक है जब यूरोप में धर्म और चर्च का मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभुत्व व वर्चस्व था। राज्य भी उसके नियमों और निर्देशों के अनुसार चलते थे इस प्रकार राज्य, चर्च और धर्म के सापेक्ष होते थे, राजसत्ता धार्मिक सत्ता के अधीन होती थी परंतु जब राज्य और चर्च के बीच तीव्र संघर्ष हुआ और राज्य, धर्म और चर्च के नियंत्रण से मुक्त होकर उसके नियमों के विपरीत चलने लगे तो वे धर्म सापेक्ष नहीं रह गए, धर्म निरपेक्ष हो गए और सेकुलर कहलाए, इसी सेकुलर से "सेक्यूलरिज्म" बना।

धर्म निरपेक्षता मूलतः एक पाश्चात्य अवधारणा है। भारत में इसे सर्वधर्म समभाव के रूप में स्वीकारा गया और प्रचारित किया गया। यहां पाश्चात्य धारणा से भिन्न राज्य और धर्म के बीच पूर्ण पृथक्करण न होकर सीमित पृथक्करण का प्रावधान रखा गया क्योंकि राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार रखता है।[1]

भारतीय संविधान में राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाया गया है किंतु मूल प्रस्तावना में राज्य को धर्मनिरपेक्ष घोषित नहीं किया गया था तथापि संविधान सभा के वाद-विवाद में यह तथ्य बहुत ही स्थूल रूप से स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य ही होगा।[2]

भारत में धर्मनिरपेक्षता अस्पष्ट-सा ध्येय मात्र रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति शैक्षणिक, धार्मिक अथवा सांप्रदायिक पृष्ठभूमि के अनुसार उसकी व्याख्या करने के लिए मुक्त है। वस्तुतः सेक्युलरिज्म एक अभारतीय शब्द था और भारतीय समाज इससे पूर्णतः परिचित नहीं था। भारत में पांच दशकों से राजनीतिक शब्दावली का प्रमुख अंग होते हुए भी धर्मनिरपेक्षता शब्द का कोई स्पष्ट और निश्चित अर्थ निर्धारित नहीं हुआ है। यह एक ऐसा शब्द बन गया है जिसका प्रयोग एक सुविधापूर्ण नारे के रूप में जनता को आकर्षित अथवा चलायमान करने के लिए किया जा रहा है।

यह त्रासदी में तो और क्या है कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में धर्मनिरपेक्षता मजाक बनकर रह गई है। राम, रहीम, रसखान नानक, कबीर के इस देश में धर्मयुद्ध लड़ा जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों से इसे लगातार अनगिनत हमलों का सामना करना पड़ रहा है। आज इसे पुनर्परिभाषित करने की कोशिश बराबर चल रही है। भारतीय संदर्भ में वास्तव में धर्मनिरपेक्षता का सही अर्थ क्या है और हमारे देश के लिए इसका क्या महत्व है इस पर तीव्र बहस चल रही है।

धर्मनिरपेक्षता पर बहस इस बात की है कि कुछ लोगों का मानना है कि भारत धर्म निरपेक्ष है तो अनेक राजनीतिक दलों व राजनीतिक नेताओं का अपेक्ष है कि भारतीय संविधान धर्म सापेक्ष है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ है ऐसा राज्य जिसकी धर्म के प्रति कोई अपेक्षा न हो या जो धार्मिक मामलों में तटस्थ हो। तो क्या भारत ऐसा राज्य है जिसकी धर्म के प्रति कोई अपेक्षा न हो। संविधान के अनुच्छेद 25 ने सब धर्मों के प्रति समान अपेक्षा का भाव प्रकट किया तो ऐसे में भारतीय संविधान को धर्म सापेक्ष कहना उचित होगा।[3]

आज धर्मनिरपेक्षता को पुनर्परिभाषित करने व उसके

विकल्प खोजने की बात कही जाने लगी है। विकल्प तय करने से पहले यह तय करना होगा कि हमें भविष्य के लिए कैसा भारतीय समाज चाहिए पाखंडपूर्ण, द्वेषमय, कर्मकांडी, भ्रष्ट, संवेदनहीन, असहिष्णु या आस्थावान, अनुशासनयुक्त मानवीय सरोकारयुक्त और गतिशील? अगर पहला विकल्प चाहिए तो समाज में जो भी, जैसी भी अंधी और उग्रधाराएं बह रही हैं उन्हें बहने दिया जाए और 21वीं सदी के प्रारंभ में आदिमयुग की वापसी होने दी जाए, भले ही यह वापसी हिंदुत्व, सिख या इस्लाम के नाम पर हो। दूसरी धारा का यदि सवाल है यानी पारदर्शी, संवेदनशील, आस्थावान और गतिशील समाज का तो इसके लिए बहुत कुछ सोचना होगा।

भारत में धर्मनिरपेक्षता के विकल्प के रूप उसी धारा का विकास हो सकता है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच ईश्वर के नाम पर, जाति, संप्रदाय, संस्कृति कर्मकांड आदि किसी को लेकर विभेद न करे जो संकुचित स्वार्थ प्रेरित है उसे त्याज्य माने, इस तरह की वैकल्पिक धारा से मनुष्य अपनी सारी कमियां, खूबियों के साथ मनुष्य होगा न कि हिंदू, मुस्लिम सिख या बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक?

विगत कुछ वर्षों से फासिस्ट एवं सांप्रदायिक शक्तियां भारत के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को विकृत करती आ रही हैं। 1964 में इन्होंने गौवध के विरुद्ध आंदोलन किया, 1984 के चुनावों में गंगाजल के लिए आंदोलन किया फिर गौमाता, गंगामाता को भूल गए, अब राम के नाम पर जो कुछ हो रहा है उसने धर्म निरपेक्ष मूल्यों पर गहरी चोट की। राम तो संपूर्ण भारतीयता में रमे हैं किंतु वोटों की राजनीति ने राम पर ही आक्षेप लगा दिया और हमारी आध्यात्मिक ऊर्जस्विता को कलंकित कर धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

संदर्भ

1. *अनुच्छेद 25, 26, 44, 290 भारत का संविधान*
2. *संविधान असेंबली डिबेट, ग्रंथ-7 भाग-2 पृष्ठ 815*
3. *असली भारत, मार्च 1993 लेख "धर्मनिरपेक्ष नहीं धर्म सापेक्ष है भारतीय संविधान" पृष्ठ 26*